

## लोककला का भारतीय ललितकला पर प्रभाव: एक सौंदर्यात्मक, सांस्कृतिक एवं समकालीन अध्ययन

भक्ति अग्रवाल

सहायक प्राध्यापक, (ललितकला)

श्री कृष्णा विश्वविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

### सारांश

भारतीय कला परंपरा विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध कलात्मक परंपराओं में से एक है, जिसमें लोककला और ललितकला दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है। लोककला भारतीय समाज की आत्मा का प्रत्यक्ष प्रतिबिंब है, जो जनसामान्य के जीवन, आस्था, परंपराओं, सामाजिक संरचनाओं और सांस्कृतिक मूल्यों को अभिव्यक्त करती है। दूसरी ओर, ललितकला अपेक्षाकृत परिष्कृत, शिक्षित और संस्थागत कला रूप के रूप में विकसित हुई है। जिसमें सौंदर्यबोध, रचनात्मक प्रयोग और वैचारिक अभिव्यक्ति को विशेष महत्व दिया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि किस प्रकार भारतीय लोककला ने विभिन्न कालखंडों में भारतीय ललितकला को प्रभावित किया है तथा आधुनिक एवं समकालीन भारतीय ललितकला में लोककला की भूमिका किस रूप में परिलक्षित होती है। भारतीय ललितकला का विकास लोक परंपराओं, धार्मिक प्रतीकों, ग्रामीण जीवन और आदिवासी सौंदर्यबोध से निरंतर प्रेरित होता रहा है।

शोध पत्र में ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय एवं सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह अध्ययन किया गया है कि लोककला ने भारतीय ललितकला की विषयवस्तु, रंग योजना, संरचना, प्रतीकात्मकता और अभिव्यक्ति शैली को किस प्रकार समृद्ध किया है। साथ ही, यह भी विश्लेषण किया गया है कि वैश्वीकरण, बाज़ारीकरण और समकालीन कला प्रवृत्तियों के संदर्भ में लोककला और ललितकला के संबंध किस प्रकार बदल रहे हैं। निष्कर्षतः यह शोध इस बात को रेखांकित करता है कि लोककला और ललितकला का संबंध केवल अतीत की विरासत नहीं है, बल्कि यह भारतीय कला की निरंतर विकसित होती पहचान का अभिन्न अंग है।

## बीज शब्द

लोककला, ललितकला, भारतीय कला परंपरा, सांस्कृतिक चेतना, सौंदर्यशास्त्र, आधुनिक भारतीय कला, समकालीन कला, लोक प्रतीक।

## प्रस्तावना

भारतीय सभ्यता और संस्कृति की निरंतरता का सबसे सशक्त प्रमाण उसकी कला परंपरा में दृष्टिगोचर होता है। कला न केवल सौंदर्य का माध्यम है, बल्कि वह समाज के जीवन-मूल्यों, विश्वासों, संघर्षों और आकांक्षाओं की संवाहक भी होती है। भारतीय कला परंपरा में लोककला और ललितकला, दोनों ही अभिव्यक्ति के महत्वपूर्ण माध्यम रहे हैं। जहाँ लोककला जनसामान्य की सहज रचनात्मकता और सामूहिक चेतना की उपज है, वहीं ललितकला अपेक्षाकृत बौद्धिक, परिष्कृत और संस्थागत स्वरूप में विकसित हुई है। इसके बावजूद इन दोनों कला धाराओं के बीच एक गहरा और ऐतिहासिक संबंध विद्यमान रहा है।

लोककला का उद्भव मानव सभ्यता के प्रारंभिक चरणों से जुड़ा हुआ है। जब मनुष्य ने अपने दैनिक जीवन, धार्मिक विश्वासों और प्राकृतिक शक्तियों को चित्रों, प्रतीकों और अलंकरणों के माध्यम से अभिव्यक्त करना आरंभ किया, तभी लोककला का जन्म हुआ। यह कला किसी एक कलाकार की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा का परिणाम नहीं थी, बल्कि समाज की सामूहिक अनुभूति और अनुभवों की अभिव्यक्ति थी। लोककला में प्रयुक्त रूपांकन रंग और प्रतीक सामान्यतः जीवन से जुड़े होते हैं—जैसे कृषि, पशु, प्रकृति, देवी-देवता, लोककथाएँ और सामाजिक अनुष्ठान। इसके विपरीत, ललितकला का विकास शास्त्रीय परंपराओं, दरबारी संरक्षण और कलात्मक प्रशिक्षण के माध्यम से हुआ।

औपनिवेशिक काल में भारतीय कला पर पश्चिमी कला दृष्टिकोण का गहरा प्रभाव पड़ा, जिससे पारंपरिक भारतीय कला रूपों को पिछड़ा या अल्पविकसित मानने की प्रवृत्ति बढ़ी। इस दौर में लोककला को भी केवल ग्रामीण या आदिवासी समाज की सीमित अभिव्यक्ति के रूप में देखा गया। किंतु स्वतंत्रता आंदोलन के साथ-साथ सांस्कृतिक पुनर्जागरण की भावना ने भारतीय कलाकारों को अपनी जड़ों की ओर पुनः लौटने के लिए प्रेरित किया। इसी काल में लोककला के

महत्व को पुनः पहचाना गया और उसे भारतीय ललितकला के सृजनात्मक स्रोत के रूप में स्वीकार किया गया। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, जब आधुनिक और समकालीन भारतीय कला ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर अपनी पहचान बनानी प्रारंभ की, तब लोककला के तत्व-जैसे प्रतीकात्मकता, सपाट रंग योजना, कथात्मक संरचना और सजावटी रूपांकन-ललितकला में नए अर्थों के साथ सम्मिलित होने लगे। लोककला अब केवल अतीत की विरासत नहीं रही, बल्कि आधुनिक संवेदनाओं और समकालीन विषयों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई।

प्रस्तुत शोध पत्र इसी पृष्ठभूमि में यह अध्ययन करने का प्रयास करता है कि लोककला ने भारतीय ललितकला को किस प्रकार वैचारिक, सौंदर्यात्मक और संरचनात्मक रूप से प्रभावित किया है। यह शोध न केवल कला इतिहास के अध्ययन में योगदान देता है, बल्कि समकालीन भारतीय कला की सांस्कृतिक पहचान को समझने में भी सहायक सिद्ध होता है।

## लोककला की अवधारणा एवं परिभाषा

लोककला का अर्थ - 'लोककला' शब्द दो शब्दों 'लोक' और 'कला' से मिलकर बना है। 'लोक' का तात्पर्य सामान्य जनसमुदाय से है, जिसमें ग्रामीण, आदिवासी, कृषक, कारीगर तथा पारंपरिक समाज की सामूहिक चेतना सम्मिलित होती है। 'कला' मानव की सृजनात्मक अभिव्यक्ति का वह रूप है, जिसके माध्यम से वह अपने अनुभवों, भावनाओं और विश्वासों को दृश्य, श्रव्य या मूर्त रूप प्रदान करता है। इस प्रकार, लोककला वह कला है जो सामान्य जनजीवन से उत्पन्न होती है और समाज की सामूहिक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करती है। लोककला किसी एक कलाकार की व्यक्तिगत कल्पना या अकादमिक प्रशिक्षण का परिणाम नहीं होती, बल्कि यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी विकसित होने वाली एक जीवंत परंपरा है। इसका स्वरूप समय, स्थान और सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है, किंतु इसकी मूल आत्मा-सामूहिकता, सहजता और सांस्कृतिक निरंतरता-अपरिवर्तित रहती है।

## लोककला की परिभाषाएँ

विभिन्न विद्वानों ने लोककला को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से परिभाषित किया है-

1. सामाजिक दृष्टिकोण से - लोककला वह कला है जो समाज के सामान्य वर्ग द्वारा, समाज के लिए और समाज की परंपराओं के अंतर्गत निर्मित होती है। इसमें सामाजिक विश्वास, धार्मिक अनुष्ठान और लोकाचार प्रमुख भूमिका निभाते हैं।
2. सांस्कृतिक दृष्टिकोण से - लोककला किसी भी समाज की सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक होती है। यह उस समाज के इतिहास, जीवन शैली, मूल्य और विश्वदृष्टि को प्रतिबिंबित करती है।
3. सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से - लोककला में सौंदर्य की अवधारणा शास्त्रीय नियमों से अधिक सहज अनुभूति पर आधारित होती है। इसमें रंगों की तीव्रता, रेखाओं की सरलता और रूपों की प्रतीकात्मकता प्रमुख होती है।

इन परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लोककला केवल एक कला रूप नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है, जो समाज के सामूहिक जीवन से गहराई से जुड़ी होती है।

## लोककला की प्रमुख विशेषताएँ

1. सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति - लोककला व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति होती है। इसमें कलाकार की पहचान गौण और समुदाय की परंपरा प्रमुख हो जाती है। यही कारण है कि अधिकांश लोककलाओं में कलाकार का नाम ज्ञात नहीं होता।
2. धार्मिक एवं अनुष्ठानिक संबंध - भारतीय लोककला का गहरा संबंध धार्मिक विश्वासों और सामाजिक अनुष्ठानों से रहा है। देवी-देवताओं की आराधना, पर्व-त्योहार, विवाह और कृषि से जुड़े अनुष्ठान लोककला के प्रमुख विषय रहे हैं।
3. सहजता और सरलता - लोककला में जटिल तकनीकी नियमों का पालन आवश्यक नहीं होता। इसकी रेखाएँ सरल, रंग सपाट और रूपांकन प्रतीकात्मक होते हैं। यही सहजता इसे विशिष्ट बनाती है।
4. प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग - लोककला में स्थानीय और प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग किया जाता है—जैसे मिट्टी, खनिज रंग, प्राकृतिक रंजक, कपड़ा, लकड़ी आदि। यह कला और प्रकृति के गहरे संबंध को दर्शाता है।

5. उपयोगिता और सौंदर्य का समन्वय - लोककला केवल देखने की वस्तु नहीं होती, बल्कि वह दैनिक जीवन का हिस्सा होती है। घर की दीवारों पर बने चित्र, पूजा सामग्री पर की गई सजावट, वस्त्रों पर कढ़ाई—ये सभी उपयोगिता और सौंदर्य के समन्वय के उदाहरण हैं।

## लोककला और समाज का संबंध

लोककला समाज का दर्पण होती है। समाज की आर्थिक स्थिति, सामाजिक संरचना, धार्मिक विश्वास और सांस्कृतिक मूल्य लोककला में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। ग्रामीण और आदिवासी समाज में लोककला जीवन के प्रत्येक चरण से जुड़ी होती है—जन्म से लेकर मृत्यु तक। लोककला समाज को न केवल अपनी पहचान बनाए रखने में सहायता करती है, बल्कि सामूहिक स्मृति को भी संरक्षित करती है। लोककथाएँ, मिथक और प्रतीक लोककला के माध्यम से पीढ़ियों तक जीवित रहते हैं।

## लोककला और संस्कृति का अंतर्संबंध

संस्कृति किसी भी समाज की आत्मा होती है, और लोककला उस आत्मा की दृश्य अभिव्यक्ति। लोककला के माध्यम से संस्कृति केवल संरक्षित ही नहीं होती, बल्कि समय के साथ विकसित भी होती है। यही कारण है कि लोककला को 'जीवित कला परंपरा' कहा जाता है। भारतीय संदर्भ में लोककला ने क्षेत्रीय संस्कृतियों को सुदृढ़ करने के साथ-साथ राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विविधता में एकता की भारतीय अवधारणा लोककला में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

## भारतीय लोककलाओं का ऐतिहासिक विकास

भारतीय लोककला का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितनी स्वयं भारतीय सभ्यता। यह कला किसी एक कालखंड, राजा या संस्था से सीमित नहीं रही, बल्कि समाज के सामान्य जनजीवन के साथ निरंतर विकसित होती रही है। भारतीय लोककला का ऐतिहासिक विकास हमें यह

समझने में सहायता करता है कि किस प्रकार लोक अभिव्यक्ति ने कालांतर में शास्त्रीय एवं ललितकला परंपराओं को प्रभावित किया।

**1. प्राचीन काल में लोककला** - प्राचीन भारतीय समाज में कला जीवन का अभिन्न अंग थी। आदिमानव द्वारा गुफाओं की दीवारों पर बनाए गए चित्र भारतीय लोककला के प्रारंभिक रूप माने जा सकते हैं। इन चित्रों में शिकार, नृत्य, पशु और सामूहिक जीवन के दृश्य प्रमुख थे। यह कला न तो केवल सौंदर्य के लिए थी और न ही व्यक्तिगत प्रदर्शन के लिए, बल्कि यह सामाजिक स्मृति और सामूहिक अनुभवों की अभिव्यक्ति थी। इस काल में लोककला का संबंध प्रकृति और जीवन-यापन से गहराई से जुड़ा हुआ था। कृषि पशुपालन और प्राकृतिक शक्तियों के प्रति आस्था ने लोक प्रतीकों को जन्म दिया। सूर्य, चंद्रमा, वृक्ष, पशु और जल जैसे तत्व लोकचित्रों और अलंकरणों में बार-बार दिखाई देते हैं। यही प्रतीक आगे चलकर भारतीय ललितकला में भी गहन अर्थों के साथ प्रयुक्त हुए। प्राचीन धार्मिक परंपरों—जैसे यज्ञ, पूजा और उत्सव—में लोककला की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। पूजा स्थलों की सजावट अनुष्ठानों में प्रयुक्त चिह्न और प्रतीक, तथा लोकगीतों और नृत्यों के साथ जुड़े दृश्य रूप लोककला के सशक्त उदाहरण हैं। इन लोक रूपों ने बाद में मंदिर कला और शास्त्रीय चित्रण को भी प्रभावित किया।

**2. मध्यकाल में लोककला** - मध्यकाल में भारतीय समाज में राजनीतिक और धार्मिक परिवर्तन हुए, जिनका प्रभाव लोककला पर भी पड़ा। इस काल में भक्ति आंदोलन ने लोककला को नई दिशा प्रदान की। संतों और भक्त कवियों की वाणी ने जनसामान्य को सीधे प्रभावित किया, और लोककला इस भक्ति चेतना की दृश्य अभिव्यक्ति बन गई। ग्राम्य समाज में देवी-देवताओं की कथाएँ, रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों के प्रसंग, तथा स्थानीय लोकदेवताओं की कथाएँ लोकचित्रों का प्रमुख विषय बनीं। दीवारों पर बने चित्र, कपड़ों पर अंकन, और कथा-चित्र परंपराएँ इस काल में विशेष रूप से विकसित हुईं। मध्यकालीन लोककला में कथा-तत्व का विशेष महत्व रहा। चित्र केवल सजावटी नहीं थे, बल्कि वे कथावाचक की भूमिका निभाते थे। यह कथात्मकता

आगे चलकर लघु चित्रकला और दरबारी चित्र परंपराओं में भी दिखाई देती है। इस प्रकार लोककला ने न केवल विषयवस्तु प्रदान की, बल्कि दृश्य कथा-शैली (Visual Narrative) का आधार भी निर्मित किया।

**3. औपनिवेशिक काल में लोककला** - औपनिवेशिक काल भारतीय लोककला के लिए एक चुनौतीपूर्ण दौर रहा। पश्चिमी शिक्षा प्रणाली और औद्योगिक उत्पादन के प्रभाव से परंपरिक कला रूपों को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। लोककला को पिछड़ेपन का प्रतीक माना गया, और शास्त्रीय या पश्चिमी कला शैलियों को श्रेष्ठ ठहराया गया। इसके परिणामस्वरूप कई लोककला परंपराएँ धीरे-धीरे लुप्त होने लगीं। मशीन-निर्मित वस्त्रों और सजावटी वस्तुओं ने हस्तनिर्मित लोककला उत्पादों का स्थान ले लिया। फिर भी, ग्रामीण और आदिवासी समाजों में लोककला अपनी जीवंतता बनाए रखने में सफल रही, क्योंकि यह उनकी सांस्कृतिक पहचान से जुड़ी हुई थी। औपनिवेशिक काल के उत्तरार्ध में कुछ भारतीय विद्वानों और कलाकारों ने लोककला के महत्व को पुनः रेखांकित किया। उन्होंने यह समझा कि भारतीय कला की मौलिकता लोक परंपराओं में निहित है। यह चेतना आगे चलकर आधुनिक भारतीय ललितकला के विकास का आधार बनी।

**4. आधुनिक काल में लोककला** - आधुनिक काल में लोककला को एक नई पहचान प्राप्त हुई। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के निर्माण में लोककला की भूमिका महत्वपूर्ण रही। लोककला को भारतीयता के प्रतीक के रूप में देखा गया और इसे संरक्षण एवं प्रोत्साहन मिला। इस काल में लोककला और ललितकला के बीच संवाद स्थापित हुआ। आधुनिक कलाकारों ने लोककला की सहज रेखाओं, सपाट रंगों और प्रतीकात्मकता को अपनाया, किंतु उन्हें आधुनिक संवेदनाओं और विषयों के साथ जोड़ा। इस प्रक्रिया में लोककला केवल प्रेरणा स्रोत नहीं रही, बल्कि रचनात्मक प्रयोग का माध्यम बन गई। आधुनिक काल में कला संस्थानों, संग्रहालयों और अकादमिक शोध के माध्यम से लोककला को मान्यता मिली। लोककला अब केवल ग्रामीण

समाज की अभिव्यक्ति नहीं रही, बल्कि राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय कला मंचों पर प्रस्तुत की जाने लगी।

## लोककला के ऐतिहासिक विकास का ललितकला पर प्रभाव

लोककला के ऐतिहासिक विकास ने भारतीय ललितकला को कई स्तरों पर प्रभावित किया जैसे –

1. विषयवस्तु: जनजीवन, लोककथाएँ और धार्मिक आस्थाएँ
2. रूपांकन: सरल रेखाएँ और प्रतीकात्मक आकृतियाँ
3. रंग योजना: प्राकृतिक और तीव्र रंगों का प्रयोग
4. कथात्मकता: दृश्य कथा परंपरा का विकास

इन सभी तत्वों ने भारतीय ललितकला को एक विशिष्ट पहचान प्रदान की, जो उसे पाश्चात्य कला परंपराओं से अलग करती है।

## भारतीय लोककलाओं की प्रमुख शैलियाँ एवं उनका ललितकला पर प्रभाव

भारत की लोककला उसकी सांस्कृतिक विविधता का सजीव प्रमाण है। भौगोलिक, सामाजिक और धार्मिक भिन्नताओं के कारण भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग लोककला शैलियाँ विकसित हुईं। इन शैलियों ने न केवल लोकजीवन को अभिव्यक्त किया, बल्कि आधुनिक एवं समकालीन भारतीय ललितकला को भी गहराई से प्रभावित किया। इस अध्याय में कुछ प्रमुख भारतीय लोककला शैलियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. **मधुबनी चित्रकला** - मधुबनी चित्रकला बिहार के मिथिला क्षेत्र की एक प्राचीन लोककला परंपरा है। यह कला मुख्यतः घरों की दीवारों, आंगनों और पूजा स्थलों पर बनाई जाती थी। मधुबनी चित्रों की विशेषता उनकी सपाट रंग योजना, सघन रेखांकन और संपूर्ण सतह को भरने की प्रवृत्ति है। इसकी मुख्य विशेषताएँ धार्मिक एवं पौराणिक विषय, प्राकृतिक रंगों का प्रयोग, ज्यामितीय और प्रतीकात्मक आकृतियाँ, खाली स्थान (स्पेस) का अभाव हैं।

## ललितकला पर प्रभाव

मधुबनी कला की सजावटी संरचना और प्रतीकात्मकता ने आधुनिक भारतीय चित्रकला को गहराई से प्रभावित किया। कई आधुनिक कलाकारों ने इसकी रेखात्मक शैली और कथात्मक संयोजन को अपनाकर उसे नए विषयों और आधुनिक संवेदनाओं से जोड़ा। ललितकला में सपाट रंगों और सीमित परिप्रेक्ष्य का प्रयोग मधुबनी कला की प्रेरणा से विकसित हुआ।

**2. वारली चित्रकला** - वारली चित्रकला महाराष्ट्र के आदिवासी समुदाय से संबंधित है। यह कला अत्यंत सरल रूपों और प्रतीकों के माध्यम से ग्रामीण जीवन और प्रकृति के साथ मनुष्य के संबंध को दर्शाती है। इसकी मुख्य विशेषताएँ मानव आकृतियों का त्रिकोणीय रूप, सीमित रंग-मुख्यतः सफेद और भूरे रंग की पृष्ठभूमि, कृषि, नृत्य और सामूहिक जीवन के दृश्य, सहज और अमूर्त अभिव्यक्ति हैं।

## ललितकला पर प्रभाव

वारली कला की न्यूनतावादी शैली (Minimalism) ने आधुनिक भारतीय ललितकला को विशेष रूप से प्रभावित किया। समकालीन कलाकारों ने वारली की प्रतीकात्मक आकृतियों और लयात्मक संरचना को अपनाकर आधुनिक जीवन की जटिलताओं को सरल रूपों में प्रस्तुत किया। यह प्रभाव आधुनिक अमूर्त कला में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

**3. गोंड चित्रकला** - गोंड चित्रकला मध्य भारत के आदिवासी समुदायों की एक समृद्ध लोककला परंपरा है। यह कला प्रकृति, पशु-पक्षियों और लोककथाओं से गहराई से जुड़ी हुई है। इसकी मुख्य विशेषताएँ बिंदुओं और रेखाओं से बनी आकृतियाँ, चमकीले और सजीव रंग, प्रकृति-प्रधान विषय, कथात्मकता और प्रतीकात्मकता आदि हैं।

## ललितकला पर प्रभाव

गोंड कला की संरचनात्मक जटिलता और लयात्मक पैटर्न ने आधुनिक ललितकला को नई दृश्य भाषा प्रदान की। बिंदु-रेखा संयोजन और जैविक आकृतियों का प्रयोग समकालीन चित्रकला और ग्राफिक आर्ट में व्यापक रूप से अपनाया गया।

4. **पिथोरा चित्रकला** - पिथोरा चित्रकला गुजरात और मध्य प्रदेश के आदिवासी क्षेत्रों में प्रचलित है। यह कला मुख्यतः अनुष्ठानिक और धार्मिक संदर्भों में बनाई जाती है। इसकी मुख्य विशेषताएँ देवताओं और लोकदेवताओं का चित्रण, अनुष्ठानिक महत्व, कथात्मक चित्र श्रृंखला, रंगों की प्रतीकात्मकता आदि हैं।

### ललितकला पर प्रभाव

पिथोरा कला की कथा-प्रधान संरचना ने ललितकला में सीरीज आधारित चित्रण और नैरेटिव आर्ट को प्रेरित किया। समकालीन कलाकारों ने इस शैली को आधुनिक सामाजिक और राजनीतिक कथाओं की अभिव्यक्ति के लिए अपनाया।

5. **फड़ चित्रकला** - फड़ चित्रकला राजस्थान की एक विशिष्ट लोककला परंपरा है, जो मुख्यतः लोकदेवताओं और वीरगाथाओं के चित्रण के लिए जानी जाती है। यह कला कथावाचन के साथ प्रस्तुत की जाती है। इसकी मुख्य विशेषताएँ लंबे कपड़े पर चित्रण, कथा-प्रधान दृश्य, सीमित किंतु प्रभावशाली रंग एवं सामाजिक और धार्मिक कथाएँ हैं।

### ललितकला पर प्रभाव

फड़ कला की कथा-वाचन परंपरा ने आधुनिक ललितकला में इंस्टॉलेशन आर्ट और परफॉर्मेटिव आर्ट को प्रेरणा दी। चित्र और कथा के संयोजन की यह परंपरा समकालीन कला में नए प्रयोगों का आधार बनी।

### लोककला संरक्षण में ललितकला संस्थानों की भूमिका

लोककला की निरंतरता केवल कलाकारों और समुदायों के प्रयासों से ही संभव नहीं है। आधुनिक काल में कला संस्थानों, अकादमियों, संग्रहालयों और विश्वविद्यालयों ने लोककला को संरक्षित, प्रलेखित और पुनर्परिभाषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन संस्थागत प्रयासों ने लोककला को केवल परंपरा के रूप में नहीं, बल्कि अध्ययन, विमर्श और सृजन के सक्रिय क्षेत्र के रूप में स्थापित किया है।

1. **राष्ट्रीय कला संस्थान और लोककला** - स्वतंत्रता के बाद भारत में कई राष्ट्रीय स्तर की कला संस्थाओं की स्थापना हुई, जिनका उद्देश्य भारतीय कला परंपराओं-विशेषकर लोक और आदिवासी कलाओं का संरक्षण और संवर्धन करना था। ललित कला अकादमी ने लोककला को भारतीय ललितकला के अभिन्न अंग के रूप में मान्यता दी। इसके प्रमुख योगदान लोककला और आदिवासी कला की राष्ट्रीय प्रदर्शनियाँ, लोक कलाकारों को राष्ट्रीय मंच प्रदान करना एवं आधुनिक कलाकारों और लोक कलाकारों के बीच संवाद शोध, प्रकाशन और प्रलेखन आदि हैं। अकादमी के प्रयासों से लोककला केवल ग्रामीण सीमाओं तक सीमित न रहकर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा बनी।

2. **संग्रहालयों की भूमिका** - संग्रहालय लोककला के संरक्षण और प्रस्तुति में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे लोककला को ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सौंदर्यात्मक संदर्भ प्रदान करते हैं। राष्ट्रीय संग्रहालय में लोक और जनजातीय कलाओं के संग्रह ने यह सिद्ध किया कि लोककला केवल उपयोगितावादी या अनुष्ठानिक वस्तु नहीं है, बल्कि उच्च कलात्मक मूल्य से युक्त है। संग्रहालयों के माध्यम से लोककला का व्यवस्थित संरक्षण, शोधार्थियों और विद्यार्थियों के लिए अध्ययन सामग्री एवं जनसामान्य में लोककला के प्रति जागरूकता का विकास हुआ।

3. **विश्वविद्यालय और कला शिक्षा** - भारतीय विश्वविद्यालयों और कला महाविद्यालयों ने लोककला को अकादमिक अध्ययन का विषय बनाकर उसके महत्व को सुदृढ़ किया। पहले जहाँ लोककला को औपचारिक कला शिक्षा से बाहर रखा जाता था, वहीं अब लोककला पर विशेष पाठ्यक्रम, शोध परियोजनाएँ और Ph.D. कार्य, फील्ड स्टडी और प्रायोगिक अध्ययन को प्रोत्साहित किया जा रहा है। इस प्रक्रिया में लोककला को "सीखने योग्य कला" के रूप में स्वीकार किया गया, जिससे ललितकला के छात्रों को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ने का अवसर मिला।

4. **लोककला और कलाकार कल्याण योजनाएँ** - सरकारी और अर्ध-सरकारी संस्थानों द्वारा चलाई जा रही योजनाओं ने लोक कलाकारों को सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा प्रदान की। इन योजनाओं के माध्यम से प्रशिक्षण कार्यशालाएँ, छात्रवृत्तियाँ और फेलोशिप, विपणन और प्रदर्शन के अवसर प्रदान किए गए, जिससे लोककला की निरंतरता बनी रही।

5. **संस्थागत संरक्षण और रचनात्मक स्वतंत्रता** - हालाँकि संस्थागत संरक्षण ने लोककला को स्थायित्व दिया, परंतु इससे कुछ चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुईं। जब लोककला को संग्रहालय या अकादमिक ढाँचे में बाँधा जाता है, तो उसकी जीवंतता पर प्रभाव पड़ सकता है। अनुष्ठानिक और सामुदायिक संदर्भ कमजोर हो सकते हैं इसलिए आधुनिक ललितकला संस्थानों के लिए यह आवश्यक है कि वे लोककला को केवल "संरक्षित वस्तु" के रूप में नहीं, बल्कि जीवित परंपरा के रूप में देखें।

6. **लोककला और समकालीन संस्थागत पहल** - समकालीन समय में कई संस्थान लोककला और आधुनिक ललितकला के बीच सेतु का कार्य कर रहे हैं। संयुक्त प्रदर्शनियाँ, कलाकार-इन-रेजिडेंस कार्यक्रम और अंतरविषयी परियोजनाएँ लोककला को नए संदर्भ और मंच प्रदान कर रही हैं। इन पहलों के माध्यम से लोककला का समकालीन पुनर्पाठ, नई पीढ़ी के कलाकारों की भागीदारी, लोक और आधुनिक के बीच संवाद सशक्त हुआ है।

**लोककला और भारतीय ललितकला: समस्याएँ, चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ**

लोककला और भारतीय ललितकला का संबंध जितना समृद्ध और प्रेरणादायक है, उतना ही जटिल और चुनौतीपूर्ण भी। आधुनिकता, वैश्वीकरण, बाज़ारवाद और तकनीकी परिवर्तन ने इस संबंध को नए अवसर तो दिए हैं, परंतु साथ ही कई गंभीर समस्याएँ भी उत्पन्न की हैं। इस अध्याय में इन्हीं पहलुओं का विश्लेषण किया गया है।

1. **संरक्षण बनाम नवाचार की समस्या** - लोककला की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि उसका संरक्षण किस रूप में किया जाए। जब लोककला को "संरक्षित विरासत" के रूप में देखा जाता है, तो उसे एक स्थिर और अपरिवर्तनीय कला मान लिया जाता है। इससे उसकी स्वाभाविक विकासशील प्रकृति बाधित होती है। नवाचार पर रोक लगने से कलाकार की रचनात्मक स्वतंत्रता सीमित होती है। परंपरा और समकालीन अनुभवों के बीच दूरी बढ़ती है वहीं दूसरी ओर, अत्यधिक नवाचार लोककला की मूल पहचान को धुंधला कर सकता है। इस प्रकार संरक्षण और नवाचार के बीच संतुलन बनाना सबसे बड़ी चुनौती है।

2. **लोक कलाकारों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति** - लोककला की निरंतरता लोक कलाकारों के जीवन से सीधे जुड़ी हुई है। आज भी अधिकांश लोक कलाकार आर्थिक असुरक्षा, सीमित बाज़ार पहुँच, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी जैसी समस्याओं से जूझ रहे हैं। जब लोककला को ललितकला या वैश्विक कला बाज़ार में स्थान मिलता है, तब भी उसका वास्तविक लाभ हमेशा कलाकार तक नहीं पहुँचता। बिचौलियों और संस्थागत ढाँचों के कारण कलाकार की भूमिका गौण हो जाती है।

3. **बाज़ारीकरण और सांस्कृतिक क्षरण** - लोककला का बाज़ारीकरण एक दोधारी तलवार है। एक ओर यह लोककला को आर्थिक आधार प्रदान करता है, वहीं दूसरी ओर प्रतीकों का सतही उपयोग, अनुष्ठानिक और सांस्कृतिक संदर्भ का हास "एकज़ॉटिक" छवि के लिए लोककला का सरलीकरण जैसी समस्याएँ उत्पन्न करता है। इस स्थिति में लोककला अपनी गहराई खोकर केवल सजावटी वस्तु बन सकती है, जिसका भारतीय ललितकला पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

4. **भविष्य की संभावनाएँ** - इन सभी चुनौतियों के बावजूद लोककला और भारतीय ललितकला का भविष्य संभावनाओं से भरा हुआ है।

(क) **संवाद और सहयोग** - लोक कलाकारों और आधुनिक कलाकारों के बीच प्रत्यक्ष सहयोग से नई रचनात्मक संभावनाएँ खुल सकती हैं।

(ख) **तकनीक का सकारात्मक उपयोग** - डिजिटल माध्यमों के माध्यम से लोककला का प्रलेखन, वैश्विक पहुँच एवं युवा पीढ़ी की भागीदारी सुनिश्चित की जा सकती है।

(ग) **समावेशी कला नीति** - यदि सांस्कृतिक नीतियाँ लोक कलाकारों को केंद्र में रखकर बनाई जाएँ, तो लोककला और ललितकला दोनों का संतुलित विकास संभव है।

## निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र के विस्तृत अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि लोककला और भारतीय ललितकला के बीच संबंध सतही या आकस्मिक नहीं, बल्कि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सौंदर्यात्मक रूप से गहन तथा अनिवार्य है। लोककला भारतीय समाज की सामूहिक चेतना, जीवन-दृष्टि और सांस्कृतिक स्मृति की अभिव्यक्ति है, जबकि ललितकला उसी चेतना को परिष्कृत, वैचारिक और समकालीन संदर्भों में पुनर्सृजित करती है। दोनों के बीच का यह संवाद भारतीय कला को उसकी विशिष्ट पहचान प्रदान करता है।

शोध के आरंभिक अध्यायों में यह स्थापित किया गया कि लोककला किसी एक कलाकार की निजी अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि समाज की सामूहिक रचनात्मकता का परिणाम है। इसकी जड़ें दैनिक जीवन, धार्मिक आस्थाओं, प्रकृति और लोककथाओं में गहराई से धँसी हुई हैं। यही कारण है कि लोककला समय के साथ बदलते हुए भी अपनी सांस्कृतिक आत्मा को बनाए रखती है। भारतीय ललितकला ने सदैव इसी लोक आत्मा से ऊर्जा प्राप्त की है—चाहे वह प्राचीन मंदिर कला हो, मध्यकालीन कथात्मक चित्रण हो या आधुनिक एवं समकालीन प्रयोग।

ऐतिहासिक विश्लेषण से यह तथ्य सामने आया कि लोककला ने भारतीय ललितकला को विषयवस्तु, प्रतीक और कथात्मक संरचना प्रदान की। लोककथाएँ, देवी-देवता, ग्रामीण जीवन और प्रकृति से जुड़े प्रतीक शास्त्रीय और आधुनिक दोनों प्रकार की ललितकला में निरंतर उपस्थित रहे हैं। औपनिवेशिक काल में जब भारतीय कला पश्चिमी प्रभावों से जूझ रही थी, तब लोककला ही

वह आधार बनी जिसने कलाकारों को अपनी सांस्कृतिक पहचान की ओर लौटने का मार्ग दिखाया।

आधुनिक भारतीय ललितकला में लोककला का प्रभाव विशेष रूप से निर्णायक सिद्ध हुआ। लोककला की सरल रेखाएँ, सपाट रंग योजना और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति ने भारतीय आधुनिकता को पश्चिमी यथार्थवाद से अलग एक स्वतंत्र दृश्य भाषा प्रदान की। आधुनिक कलाकारों ने लोककला को केवल दृश्य शैली के रूप में नहीं अपनाया, बल्कि उसे एक वैचारिक स्रोत के रूप में ग्रहण किया। इससे भारतीय ललितकला अधिक सामाजिक, मानवीय और सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील बनी।

समकालीन संदर्भ में लोककला का महत्व और भी बढ़ गया है। आज के कलाकार लोककला को स्मृति, पहचान, प्रतिरोध और सांस्कृतिक विमर्श के माध्यम के रूप में उपयोग कर रहे हैं। लोक प्रतीक अब केवल परंपरा के वाहक नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक अर्थों से युक्त संकेत बन गए हैं। इस प्रकार लोककला समकालीन भारतीय ललितकला में एक सक्रिय और आलोचनात्मक भूमिका निभा रही है।

लोककला संरक्षण में संस्थानों और अकादमियों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है, परंतु यह संरक्षण तभी सार्थक होगा जब लोककला को एक जीवित और विकसित होती परंपरा के रूप में समझा जाए। लोक कलाकारों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार, उन्हें रचनात्मक स्वतंत्रता देना और उनके ज्ञान को सम्मान देना भविष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

निष्कर्षतः, यह शोध इस बात को रेखांकित करता है कि लोककला और ललितकला का संबंध अतीत की विरासत मात्र नहीं, बल्कि वर्तमान की आवश्यकता और भविष्य की संभावना है। भारतीय कला की पहचान, वैश्विक मंच पर उसकी मौलिकता और सांस्कृतिक गरिमा-इन सभी का आधार लोककला ही है।

## संदर्भ सूची

1. Coomaraswamy, A. K. The Arts and Crafts of India and Ceylon. Oxford University Press.
2. Brown, P. Indian Painting. Skira Publications.
3. Kramrisch, S. The Art of India. Phaidon Press.

4. Jain, Jyotindra. Indian Folk Art: Tradition, Change and Continuity. Marg Publications.
5. Archer, W. G. Tribal Art of India. Thames & Hudson.
6. Guha-Thakurta, Tapati. The Making of a New “Indian” Art. Cambridge University Press.
7. Havell, E. B. Indian Sculpture and Painting. John Murray.
8. D’Souza, Geeta Kapur. When Was Modernism: Essays on Contemporary Cultural Practice in India. Tulika Books.
9. Mishra, Kavita Singh. Museums, Heritage and Cultural Practices in India. Routledge.
10. Census of India Reports on Tribal & Folk Communities (Cultural Sections).

